आई.एल.आर. पंजाब और हरियाणा
(173-183)

***कार्यवाहक मुख्य न्यायमूर्ति जीसी* मितल और न्यायमूर्ति एचएस बेदी के समक्ष**

गुरप्रीत सिंह (नाबालिग), - अपीलकर्ता

बनाम

चतुर्भुज गोयल, प्रतिवादी

1903 का पत्र पेटेंट अपील संख्या 734

-29 अप्रैल, 1991.

सिविल प्रक्रिया संहिता , 1908– आदेश 32 नियम 3 और 4(3) (पंजाब में संशोधित) और 3ए- नाबालिग के विरुद्ध विक्रय समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा- वादी ने नियम 3 के तहत अभिभावक की नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं किया - नाबालिग की ओर से कार्य करने वाला व्यक्ति बिना अधिकार के कार्य करता है- पूर्वाग्रह माना जाता है - नियम 4(3),जैसा कि पंजाब में संशोधित है, के तहत सहमति का अनुमान उत्पन्न नहीं हो सकता–मुकदमे में पारित डिक्री कायम रखने योग्य नहीं है।

यह अभिनिर्णीत किया गया है कि विधायिका ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 3 के प्रावधानों से नाबालिगों और विकृत दिमाग वाले व्यक्तियों के लिए विशेष सुरक्षा प्रदान करने की सलाह दी है क्योंकि वे अपने हितों की देखभाल करने में असमर्थ हैं, इसलिए उन्हें विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। इसलिए अनम्य नियम यह है कि नाबालिग प्रतिवादी पर मुकदमा करने वाले वादी के लिए अभिभावक की नियुक्ति के लिए अदालत में आवेदन दायर करना अनिवार्य है और इसके बाद जो कदम उठाए जाने हैं, वे अदालत के दायरे या प्रांत के भीतर हैं। हमारा विचार है कि यदि कोई आवेदन आदेश 32, नियम 3 के अनुसार नहीं किया जाता है, तो कोई भी अभिभावक जिसने नाबालिग के लिए काम किया हो, उसे इस तरह कार्य करने के लिए अपेक्षित प्राधिकार नहीं

दिया जाएगा। सहमति तभी मानी जा सकती है जब आवेदन किया गया हो और प्रस्तावित अभिभावक को नोटिस जारी किया गया हो। (पैरा 8)

कहा गया , कि संहिता के आदेश 32, नियम 3 और 4 का अनुपालन न करना डिक्री को शून्य बनाता है और यह भी माना जाना चाहिए कि इससे अपीलकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसलिए, इस बिंदु पर विद्वान एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष उलट दिया गया है। (पैरा 11)

ट्रायल कोर्ट ने प्रतिवादी के मुकदमे को 18 जनवरी, 1982 के निर्णय से खारिज कर दिया था। दिनांक *5* अगस्त, 1983 के निर्णय द्वारा श्री न्यायमूर्ति जे.एम. टंडन ने 18 जनवरी, 1982 के ट्रायल कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादी की अपील को अनुमति दी। माननीय श्री न्यायमूर्ति जे.एम. टंडन के दिनांक 5 अगस्त, 1983 के फैसले के खिलाफ लेटर्स पेटेंट के खंड एक्स के तहत अपील दायर की गई ।

1988 का सीएम नंबर 12236 ।

संहिता की धारा 151 के तहत आवेदन में प्रार्थना की गई है कि माननीय न्यायालय आवेदक को परिसर को किसी अन्य व्यक्ति को किराए पर देने की अनुमति देने की कृपा करें ताकि आवेदक को आगे कोई वित्तीय नुकसान न उठाना पड़े।

गुरप्रीत सिंह, के साथ आर.एस. बिंद्रा, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ।

एच.एल. सरीन, वरिष्ठ प्रतिवादी के अधिवक्ता ।

निर्णय

न्यायमूर्ति हरजीत सिंह बेदी,

(1) 18 दिसंबर 1978 को, तत्कालीन नाबालिग गुरप्रीत सिंह के पिता कर्नल सुखदेव सिंह ने अपीलार्थी के मकान नंबर 1577 सेक्टर 18-डी, चंडीगढ़, की बिक्री की अनुमति देने के लिए हिंदू

अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 8 के तहत एक याचिका दायर की। **11 अप्रैल, 1979** के आदेश के तहत, इस याचिका को वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश, चंडीगढ़ द्वारा अनुमति दी गई थी और नाबालिग के संरक्षक के रूप में कर्नल सुखदेव सिंह को विचाराधीन संपत्ति बेचने की अनुमति दी गई थी। दी गई अनुमति के अनुक्रम में, अपीलकर्ता के संरक्षक के रूप में कर्नल सुखदेव सिंह ने 4 जून, 1979 को 2,85,000. रुपये में घर की बिक्री के लिए प्रतिवादी के साथ एक समझौता किया। बिक्री के समझौते ने भुगतान की समय-सारणी और वह तारीख भी तय कर दी, जब तक बिक्री विलेख निष्पादित किया जाना था। रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने समझौते की शर्तों का पालन करने के लिए बिक्री मूल्य के भुगतान की व्यवस्था की और बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए तैयार था। यह भी साक्ष्य में आया है कि दूसरी ओर, कर्नल सुखदेव सिंह ने प्रस्तावित बिक्री के संबंध में कुछ संदेह पैदा कर लिया था, जिसके परिणामस्वरूप इसे 'निर्धारित अवधि के भीतर निष्पादित नहीं किया जा सका।' 18 जुलाई, 1979 को, प्रतिवादी ने अपीलकर्ता के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया ताकि विवाद में घर को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करने से रोका जा सके और साथ ही कर्नल सुखदेव सिंह के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध के लिए एक आपराधिक शिकायत भी दायर की। हालाँकि, ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 31 अक्टूबर, 1979 के आदेश के तहत , आपराधिक शिकायत में कर्नल सुखदेव सिंह को आरोप से मुक्त कर दिया। आरोपमुक्त करने के आदेश के खिलाफ, प्रतिवादी ने 1979 की संख्या 1495 का आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया। पुनरीक्षण याचिका के लंबित रहने के दौरान, 4 फरवरी, 1980 को दोनों पक्ष विवाद पर समझौता करने के लिए सहमत हुए। प्रतिवादी 2,45,000 **रुपये** पर प्लस 1,35,000 **रुपये** पर ब्याज और किराए के लिए कुछ भुगतान करने पर सहमत हुआ। कर्नल सुखदेव सिंह को संपदा कार्यालय से मंजूरी प्राप्त करने और बिक्री विलेख निष्पादित करने की भी आवश्यकता थी। इसके बाद, आपराधिक शिकायत और दीवानी मुकदमा वापस लेने पर

सहमति बनी। ऐसा प्रतीत होता है कि एक बार फिर कर्नल सुखदेव सिंह ने समझौते की शर्तों का ईमानदारी से पालन नहीं किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सी.आर.एल. 1979 की संशोधन संख्या 1495 को अंततः उच्च न्यायालय ने 11 फरवरी, 1980 के आदेश के तहत स्वीकार कर लिया और कर्नल सुखदेव सिंह को आरोप मुक्त करने के ट्रायल कोर्ट के आदेश को रद्द कर दिया गया। हाई कोर्ट के आदेश के खिलाफ कर्नल सुखदेव सिंह ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सी.आर.एल. अपील संख्या 595/1980 दायर की , जिस पर 2 सितंबर, 1980 को निर्णय दिया गया और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया और ट्रायल मजिस्ट्रेट के आदेश को बहाल कर दिया गया। प्रतिवादी को 4 जून, 1979 के समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा दायर करने का अवसर भी दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने, अपने उपरोक्त आदेश के तहत यह भी निर्देश दिया कि अपीलकर्ता यानी गुरप्रीत सिंह 40,000 रुपये की बयाना राशि लौटाएगा, जो उसने प्रतिवादी से प्राप्त की थी।

(2) सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे के जवाब में, नाबालिग अपीलकर्ता के अभिभावक के रूप में कर्नल सुखदेव सिंह ने वादपत्र में लगाए गए आरोपों का खंडन करते हुए एक लिखित बयान दायर किया। तथ्यों के आधार पर यह कहा गया कि अपीलकर्ता अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक था और प्रतिवादी श्री सी.बी. गोयल द्वारा चूक की गई थी। यह भी उल्लेख किया गया था कि 1979 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1495 के लंबित रहने के दौरान पार्टियों के बीच हुए समझौते का पालन नहीं किया जा सका क्योंकि आयकर निकासी प्रमाणपत्र नहीं दिया गया था। यह भी आग्रह किया गया कि 4 फरवरी, 1980 को पार्टियों के बीच हुए समझौते और 2 सितंबर, 1980 के सुप्रीम कोर्ट के आदेश के मद्देनजर 4 जून, 1979 को बेचने का समझौता रद्द कर दिया गया। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 31 के प्रावधानों का पालन न करने के कारण वाद की पोषणीयता का निर्णय लिया गया। ट्रायल कोर्ट, रिकॉर्ड पर सबूतों की जांच करने के बाद, इस निष्कर्ष पर

पहुंचा कि अपीलकर्ता द्वारा बिक्री विलेख के निष्पादन में चूक की गई थी और अनुबंध का कोई नवीनीकरण नहीं हुआ था क्योंकि अदालत में बयान मामले की सुनवाई के समय न्यायालय में एक समझौते का प्रस्ताव रखा गया। हालाँकि, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने वादी प्रतिवादी को इस आधार पर डिक्री देने से इनकार कर दिया कि विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों के मद्देनजर एक विशिष्ट प्रदर्शन के मुकदमे में राहत विवेकाधीन है, इसलिए ऐसी डिक्री देना न्यायालय के लिए बाध्य नहीं था। अदालत ने माना कि विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री देते समय, नाबालिग के हित को प्राथमिक विचार के रूप में ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह माना गया कि 4 जून, 1979 को समझौते पर हस्ताक्षर किए हुए दो साल से अधिक समय बीत चुका था और इस अवधि के दौरान दिल्ली में अचल संपत्ति की कीमतें काफी बढ़ गई थीं। नाबालिग के लिए प्रतिवादी से मिलने वाली रकम से दिल्ली में कोई संपत्ति खरीदना संभव नहीं था। यह निष्कर्ष इस तथ्य पर आधारित था कि हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1959 की धारा 8 के तहत संपत्ति बेचने की अनुमति हासिल करते समय अदालत ने आदेश दिया था कि बिक्री आय से नाबालिग के लिए कुछ संपत्ति खरीदी जाए।

(3) एक अतिरिक्त कारक जो न्यायालय द्वारा विशिष्ट प्रदर्शन की राहत को अस्वीकार करने पर विचारधीन कर रहा था, वह यह था कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 3 के अनुसार कर्नल सुखदेव सिंह को नाबालिग अपीलकर्ता के लिए संरक्षक नियुक्त नहीं किया गया था, और, इस प्रकार, कर्नल सुखदेव सिंह प्रतिवादी/अपीलकर्ता की ओर से मुकदमे का बचाव करने में सक्षम नहीं थे। विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा अपनाए गए तर्क पर यह माना गया कि वादी-प्रतिवादी विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री का हकदार नहीं था। ट्रायल कोर्ट के फैसले से असंतुष्ट, प्रतिवादी ने इस न्यायालय में अपील की, विद्वान एकल न्यायाधीश ने ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों का समर्थन किया कि 4 जून, 1979 के समझौते के अनुपालन में अपीलकर्ता-प्रतिवादी द्वारा चूक की गई थी। आदेश 32, नियम 3, सी.पी.सी. के प्रावधानों के गैर-अनुपालन के सवाल पर विद्वान एकल

न्यायाधीश ने माना कि कर्नल सुखदेव सिंह, हालांकि औपचारिक रूप से अभिभावक के रूप में नियुक्त नहीं थे, उन्होंने अपीलकर्ता के लिए प्रभावी ढंग से अपनी सर्वोत्तम क्षमता और दृढ़ता के साथ मामलों का संचालन किया और मुकदमा लड़ा। यह माना गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन न करना एक अनियमितता थी और इस प्रकार, आदेश 32, नियम 3-ए, सी.पी.सी. के संदर्भ में इसे नजरअंदाज करना आवश्यक था क्योंकि अपीलकर्ता को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है । विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी माना कि विशिष्ट प्रदर्शन की राहत से इनकार करने में ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए कारण उचित नहीं थे। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपील की अनुमति दी और मुकदमे का फैसला सुनाया। विद्वान एकल न्यायाधीश की डिक्री के विरुद्ध वर्तमान पत्र पेटेंट अपील दायर की गई है।

(4) श्रीमान आर.एस. बिंद्रा, अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उठाए गए विभिन्न तर्कों को दोहराया है। उन्होंने तर्क दिया है कि साक्ष्यों को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि विक्रय-पत्र के निष्पादन में चूक प्रतिवादी की है। हमने इस तर्क की जांच की है और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों का अवलोकन किया और पाया कि इस बिंदु पर ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही है और लेटर्स पेटेंट के तहत अपील में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(5) श्री बिंद्रा ने तर्क दिया कि 4 फरवरी, 1980 को उच्च न्यायालय में और उसके बाद 2 अक्टूबर, 1980 को उच्चतम न्यायालय में हुए समझौते के मद्देनजर मूल अनुबंध का नवीनीकरण किया गया था। उन्होंने यह भी बताया है कि वर्तमान पत्र पेटेंट अपील के लंबित रहने के दौरान पार्टियों के बीच एक और समझौता हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस एल.पी.ए. की सुनवाई पहली बार 14 जनवरी, 1987 को एक डिवीजन बेंच के समक्ष शुरू हुई और कई दिनों तक चली। 16 जनवरी 1987 को, प्रतिवादी के वकील ने बहस पूरी नहीं की और सुनवाई 28 जनवरी 1987

तक के लिए स्थगित कर दी गई। उस दिन पार्टियों ने समझौते की संभावना तलाशने के लिए समय लिया और वास्तव में समझौता हो गया। पार्टियों के बीच में. कर्नल सुखदेव सिंह द्वारा 2,25,000 रुपये का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त करते हुए एक बयान दर्ज किया गया था। विवाद के पूर्ण और अंतिम निपटान के लिए श्री सी.बी. गोयल को 2,25,000 रुपये दिए गए और इस कथन का श्री वी.के. शर्मा, अपीलकर्ता गुरप्रीत सिंह के वकील द्वारा विधिवत समर्थन किया गया।

इस बयान के बाद , प्रस्ताव को श्री सी.बी. गोयल ने स्वीकार कर लिया जब उन्होंने निम्नलिखित बयान दिया:

"मैं कर्नल सुखदेव सिंह एवं वी.के. शर्मा, अपीलकर्ता गुरप्रीत सिंह के वकील द्वारा दिया गया प्रस्ताव स्वीकार करता हूं। "

इस पर मामला 17 मार्च 1987 तक के लिए स्थगित कर दिया गया, जिस तारीख को 2,25,000 रुपये का भुगतान किया जाएगा। हालाँकि ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंतराल के दौरान प्रतिवादी ने अपना मन बदल लिया और इस तथ्य का लाभ उठाते हुए समझौते से पीछे हटने का फैसला किया कि समझौता सिविल प्रक्रिया संहिता आदेश 23 नियम 3 के संदर्भ में दर्ज नहीं किया गया था। समझौता लिखित रूप में होना और पार्टियों द्वारा हस्ताक्षरित होना आवश्यक था। चूँकि समझौता हो चुका था, डीबी का गठन करने वाले प्रथम न्यायाधीश ने मामले को सुनवाई के लिए किसी अन्य पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया। हालाँकि अपीलकर्ता ने 1987 की सिविल अपील संख्या 2035 के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और प्रार्थना की कि दर्ज किए गए बयान एक वैध समझौता हैं। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने यह कहते हुए अपील खारिज कर दी कि उच्च न्यायालय के समक्ष दर्ज समझौता वैध नहीं था क्योंकि इसे आदेश 23, नियम 3, सिविल प्रक्रिया संहिता के अनिवार्य प्रावधानों के संदर्भ में दर्ज नहीं किया गया था।

(6)यह तो तथ्यों के कथन स्पष्ट हो जाएगा कि श्री बिंद्रा द्वारा उठाए गए तर्क में कोई दम नहीं है क्योंकि 4 फरवरी, 1980 को हुए समझौते और उसके बाद 2 सितंबर, 1980 को हुए समझौते, अनुबंध का नवीनीकरण नहीं थे क्योंकि ये विवाद को निपटाने के लिए पक्षों के बीच समझौता प्रस्तावित किया गया था और पार्टियों का 4 जून, 1979 के समझौते के किसी भी हिस्से को बदलने या संशोधित करने का कोई इरादा नहीं था। यह तर्क 28 जनवरी, 1987 को लेटर्स पेटेंट बेंच के समक्ष हुए तीसरे समझौते के संबंध में भी लागू किया जाना चाहिए। ट्रायल कोर्ट और विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी माना है कि पहले के दो समझौतों (तीसरा अभी तक अस्तित्व में नहीं आया था) के संबंध में पार्टियों की कार्रवाई 4 जून, 1979 के अनुबंध का नवीनीकरण नहीं है। हम इस संबंध में ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश से भी सहमत हैं।

.(7) श्री बिंद्रा ने अतिरिक्त रूप से तर्क दिया है कि विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमे में वादी को सिविल प्रक्रिया संहिता के परिशिष्ट 'ए' के फॉर्म संख्या 47 और 48 में निर्धारित प्रोफार्मा विकल्प के अनुरूप होना चाहिए, और यह विशेष रूप से अनुरोध किया गया होना चाहिए कि वादी अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था। उन्होंने तर्क दिया है कि वादी में इन कथनों का अभाव था। हमने वादपत्र का अध्ययन किया है और पाया है कि वादपत्र में आवश्यक कथन दिए गए हैं और इस प्रकार, यह तर्क भी गलत है।

(8)हालाँकि, प्राथमिक तर्क यह है कि नाबालिग अपीलकर्ता के संरक्षक कर्नल सुखदेव सिंह को सिविल प्रक्रिया संहिता के 'आदेश 32, नियम 3 और 4 के तहत निर्धारित प्रक्रिया' का अनुपालन करते हुए नियुक्त नहीं किया गया था, इसलिए मुकदमा सक्षम नहीं था और इस संक्षिप्त आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए था। इस तर्क पर ट्रायल कोर्ट द्वारा विचार किया गया और स्वीकार किया गया, लेकिन अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष को खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता का उसके पिता और अभिभावक कर्नल सुखदेव सिंह ने प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व किया था और कर्नल सुखदेव सिंह को संरक्षक के रूप में नियुक्त करने का औपचारिक

आदेश देने के लिए नोट में चूक से नाबालिग पर कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ और, इस तरह, मुकदमा सक्षम था। मामले की जांच सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 3 और 4 के प्रावधानों के आलोक में की जानी है, जो इस प्रकार है: -

"(1) जहां प्रतिवादी नाबालिग है, अदालत उसके नाबालिग होने के तथ्य से संतुष्ट होने पर, ऐसे नाबालिग के लिए संरक्षक या मुकदमा करने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त करेगी।

(2) मुकदमे के लिए अभिभावक की नियुक्ति का आदेश नाबालिग के नाम और उसकी ओर से या वादी द्वारा आवेदन करने पर प्राप्त किया जा सकता है।

(3) इस तरह के आवेदन को एक हलफनामे द्वारा समर्थित किया जाएगा जिसमें इस तथ्य की पुष्टि की जाएगी कि प्रस्तावित अभिभावक को नाबालिग के प्रतिकूल मुकदमे में विवाद वाले मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं है और वह इस तरह नियुक्त होने के लिए उपयुक्त व्यक्ति है।

(4) इस नियम के तहत किसी भी आवेदन पर कोई आदेश नहीं दिया जाएगा, सिवाय इसके कि उस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त या घोषित किए गए नाबालिग के किसी अभिभावक को नोटिस दिया जाए, या, जहां ऐसा कोई अभिभावक नहीं है, (नाबालिग के पिता को नोटिस पर या जहां है कोई पिता नहीं, माता को, या जहां कोई पिता या माता नहीं है; अन्य प्राकृतिक अभिभावक को), या, जहां (कोई पिता, माता या अन्य प्राकृतिक अभिभावक नहीं है) वहां, उस व्यक्ति को जिसकी देखभाल में नाबालिग है, और इस उप-नियम के तहत नोटिस प्राप्त करने वाले किसी भी व्यक्ति की ओर से किसी भी आपत्ति को सुनने के बाद आदेश किया जा सकता है।

नियम 4 का उपनियम (3) इस प्रकार है:

"किसी भी व्यक्ति को उसकी सहमति (लिखित रूप में) के बिना मुकदमे के लिए संरक्षक नियुक्त नहीं किया जाएगा, लेकिन अदालत यह मान सकती है कि स्वेह सहमति दी गई है जब तक कि इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया जाता है।

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32-नियम 3, के प्रावधानों से यह देखा जा सकता है कि विधायिका ने नाबालिगों और विकृत दिमाग वाले व्यक्तियों के लिए विशेष सुरक्षा प्रदान करने की सलाह दी है क्योंकि वे अपने हितों की देखभाल करने में असमर्थ हैं, इसलिए उन्हें विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। नियम 3 में विशेष रूप से प्रावधान है कि अभिभावक की नियुक्ति के लिए एक आवेदन करना होगा और ऐसे आवेदन को उप-नियम (3) में उल्लिखित विवरण देने वाले एक हलफनामे द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए। नियम 3 के उप-नियम (4) में प्रावधान है कि नियम 3 के तहत दायर आवेदन पर कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि अभिभावक, यदि कोई हो, को नोटिस नहीं दिया गया हो, जहां ऐसा कोई अभिभावक नहीं है, (नाबालिग के पिता को नोटिस पर या जहां है कोई पिता नहीं, माता को, या जहां कोई पिता या माता नहीं है; अन्य प्राकृतिक अभिभावक को), या, जहां (कोई पिता, माता या अन्य प्राकृतिक अभिभावक नहीं है) वहां, उस व्यक्ति को जिसकी देखभाल में नाबालिग है। नियम 4 के उप-नियम (3) में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना अभिभावक नियुक्त नहीं किया जाएगा (और रेखांकित भाग जोपंजाब राज्य द्वारा किया गया एक संशोधन है) प्रदान करता है कि न्यायालय स्वेह सहमति मान सकता है जब तक कि इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार न किया गया हो। इसलिए कड़ा नियम यह है कि नाबालिग प्रतिवादी पर मुकदमा करने वाले वादी के लिए अभिभावक की नियुक्ति के लिए अदालत में आवेदन दायर करना अनिवार्य है और इसके बाद जो कदम उठाए जाने हैं, वे अदालत के दायरे या प्रांत के भीतर हैं।

हमारा विचार है कि यदि कोई आवेदन आदेश 32, नियम 3 के अनुसार नहीं किया जाता है तो कोई भी अभिभावक जिसने नाबालिग के लिए काम किया हो, उसे इस तरह कार्य करने के लिए अपेक्षित प्राधिकार नहीं दिया जाएगा। सहमति तभी मानी जा सकती है जब आवेदन किया गया हो और प्रस्तावित अभिभावक को नोटिस जारी किया गया हो।

(9) प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सरीन ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32 के नियम 3-ए के प्रावधानों पर भी भरोसा जताया है, जो इस प्रकार है:

" किसी अवयस्क के विरुद्ध पारित किसी भी डिक्री को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा कि अवयस्क के मुकदमे के अगले मित्र या अभिभावक की वाद की विषय-वस्तु में रुचि थी जो अवयस्क के प्रतिकूल थी, लेकिन तथ्य यह है कि मुकदमे के लिए अगले मित्र या अभिभावक के ऐसे प्रतिकूल हित के कारण, नाबालिग के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, डिक्री को रद्द करने का आधार होगा।"

** ** ** **

** ** ** **

उन्होंने तर्क दिया है कि कर्नल सुखदेव सिंह द्वारा इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय तक सराहनीय ढंग से लड़ा गया था और नाबालिग के हितों की रक्षा के लिए उनके द्वारा सभी संभव कदम **उठाए गए थे।** इस तर्क पर, उनका दावा है कि नाबालिग अपीलकर्ता को कोई पूर्वाग्रह नहीं झेलना पड़ा है और, इस प्रकार, वादी-प्रतिवादी के पक्ष में एक वैध डिक्री पारित की जा सकती है। उन्होंने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर प्राथमिक निर्भरता रखी है, जिसे अमरीक सिंह और अन्य बनाम

करनैल सिंह और अन्य[1] के रूप में रिपोर्ट किया गया है। उन्होंने वालियान बनाम बांके बिहारी प्रसाद सिंह[2], भागवत साहू बनाम पारबती सामल[3] और आनंदराम बनाम माधोलाल[4] पर भी भरोसा किया है।

(10) हालांकि हमारा मानना है कि उद्धृत प्राधिकारी तथ्यों के आधार पर भिन्न हैं और प्रतिवादी के मामले का समर्थन नहीं करते हैं । अमरीक सिंह के मामले *(सुप्रा)* में तथ्य यह थे कि अमरीक सिंह और वीर सिंह नाबालिग प्रतिवादियों पर उनके अभिभावक के रूप में उनके सगे भाई सतनाम सिंह के माध्यम से मुकदमा दायर किया गया था। आदेश 32, नियम 3, सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि उपरोक्त सतनाम सिंह को नाबालिगों के संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाए। यह भी उल्लेख किया गया था कि अजीत सिंह भाई, मंगल सिंह पिता, तीरथ कौर मां और न्यायालय के एक अधिकारी, नाबालिगों के संरक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए उत्तरदायी थे। सतनाम सिंह ने अभिभावक के रूप में कार्य करने से इनकार कर दिया और उसके बाद न्यायालय ने मदन गोपाल एडवोकेट को नाबालिग प्रतिवादियों का संरक्षक नियुक्त किया। इस स्थिति में पूर्ण पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि नाबालिगों का प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व किया गया था और उनके साथ कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था। पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

> "मामले की जड़ यह है कि क्या मुकदमे में नाबालिग का प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व किया गया था। यदि वह था, तो आदेश 32, नियम 3 के प्रावधान, जो अनिवार्य हैं, का अनुपालन न करने से निर्णय शून्य नहीं होगा। लेकिन अगर गैर-अनुपालन के कारण नाबालिग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या उसका प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व नहीं किया गया

---

1 ए.आई.आर. 1974 पी एवं एच 315

2 आई.एल.आर. 1903 (कलकत्ता) 1021

3 ए.आई.आर. 1982 उड़ीसा 186

4 ए.आई.आर. 1960 राजस्थान 189

है , तो निर्णय शून्य हो जाएगा, यानी, नाबालिग या तो इसे अनदेखा कर सकता है या इससे बच सकता है। यह दृष्टिकोण न्याय के अनुरूप है क्योंकि जहां मामले का उचित परीक्षण किया गया था और नाबालिग के साथ कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है, मामले को फिर से खोलना दूसरे पक्ष के साथ सरासर अन्याय होगा। मुकदमेबाजी एक बहुत महंगा मामला है और कानून का सामान्य सिद्धांत यह है कि इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का सवाल है, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती है कि नाबालिगों का प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व किया गया था और उनके साथ कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है। उनके हितों की रक्षा उनके भाइयों द्वारा प्रभावी ढंग से की गई, जो उनके साथ सह-प्रतिवादी थे और जिनके हित समान थे।"

आनंदराम के मामले (सुप्रा) पर निर्भरता भी गलत है। इस मामले में, नाबालिग प्रतिवादी का उसके पिता ने प्रभावी ढंग से प्रतिनिधित्व किया था, जो प्रतिवादियों में से भी एक था और अदालत ने माना कि अपने मामले की रक्षा में नाबालिग को कोई पूर्वाग्रह नहीं झेलना पड़ा था। इसके अलावा, इस मामले में वादी ने वास्तव में एक अभिभावक की नियुक्ति के लिए ट्रायल कोर्ट में आवेदन प्रस्तुत किया था और अदालत ने औपचारिक आदेश पारित न करके चूक की थी। इस वादे पर यह माना गया कि केवल यह तथ्य कि अभिभावक की नियुक्ति का कोई औपचारिक आदेश नहीं दिया गया है, मुकदमा अमान्य नहीं होगा।

(11) निर्मल चंद्र बनाम खंडू घोष[5] के रूप में रिपोर्ट किए गए कलकत्ता उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है , जो, हमारी राय में, वर्तमान के तथ्यों के समान है। इस मामले में नाबालिगों ने एक मुकदमा दायर कर यह घोषणा करने की मांग की कि उनके खिलाफ प्राप्त एक पक्षीय किराया

[5] ए.आई.आर. 1965 कलकत्ता 562

डिक्री उन पर बाध्यकारी नहीं थी क्योंकि उस किराए के मामले में उनका उचित प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था। दूसरे पक्ष की ओर से यह तर्क दिया गया कि नाबालिगों के साथ कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है क्योंकि उनका प्रतिनिधित्व उनके भाई ने किया था। उस पक्ष द्वारा माउंट बीबी वालियान के मामले (सुप्रा) पर भी भरोसा किया गया था । हालाँकि, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि चूंकि कोई आवेदन नहीं किया गया था, जैसा कि संहिता के आदेश 32, नियम 3 के तहत आवश्यक था, प्रस्तावित अभिभावक को नियम 3 के उप-नियम 4 के अनुसार कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और न ही नियम 4 के उप-नियम (3) के तहत प्रस्तावित अभिभावक से लिखित में सहमति ली गई थी। आदेश 32 के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था और, इस तरह, पहले के मुकदमे में डिक्री रद्द कर दी गई थी। यह भी माना गया कि वालियान के मामले (सुप्रा) ने सिविल प्रक्रिया संहिता (1882 का अधिनियम XIV) की धारा 443 की व्याख्या की थी और उस धारा का शब्दांकन आदेश 32, नियम 3 और 4 के शब्दों से काफी अलग था। हमारा भी विचार है कि संहिता के आदेश 32, नियम 3 और 4 के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन न करने से डिक्री शून्य हो जाती है और यह भी माना जाना चाहिए कि इससे अपीलकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसलिए, इस बिंदु पर विद्वान एकल न्यायाधीश का निष्कर्ष उलटा है। उपरोक्त परिसर में आम तौर पर मामले को नए फैसले के लिए ट्रायल कोर्ट में भेजना होगा; लेकिन बाद के पैराग्राफों में दर्ज कारणों से, हमें लगता है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह उचित कदम नहीं होगा।

(12) हमारा विचार है कि विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री के माध्यम से विवेकाधीन राहत प्रतिवादी को दी जाने योग्य नहीं है। इस संबंध में रंगनायकम्मा बनाम गोविल नारायण[6] पर भरोसा किया जा सकता है, जिसमें यह माना गया है कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री केवल इसलिए नहीं दी जाएगी क्योंकि ऐसा करना वैध है, और जहां प्रतिवादी को कठिनाई होती है ,

---

[6] ए.आई.आर. 1982 कर्नाटक 264

और वादी को ऐसी कोई कठिनाई नहीं होगी । ट्रायल कोर्ट ने विशिष्ट निष्पादन की डिक्री को अस्वीकार करने के लिए विभिन्न कारण दिए थे और हम उन कारणों को दोहराते हैं। इसके अतिरिक्त, हमने पाया कि प्रतिवादी लेटर्स पेटेंट बेंच के समक्ष समझौता करने के लिए सहमत हो गया था और उसने इस आशय का अपना बयान दर्ज कराया था। हालाँकि, प्रतिवादी इस तथ्य का लाभ उठाते हुए कि संहिता के आदेश 23, नियम 3 के प्रावधानों के अनुसार औपचारिक समझौता दर्ज नहीं किया गया था, प्रस्तावित समझौते से मुकर गया। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने माना है कि आदेश 23, नियम 3 के प्रावधानों के अनुपालन न होने के कारण समझौता लागू नहीं किया जा सकता है, हमारा विचार है कि इस तथ्य को यह निर्णय लेने में ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या न्यायालय के विवेक से वादी-प्रतिवादी को विशिष्ट निष्पादन की डिक्री दी जानी चाहिए। हमें लगता है कि प्रतिवादी ने इस राहत का अधिकार खो दिया है, क्योंकि वह अदालत से पहले समझौता करने के लिए सहमत हो गया था और बाद में इससे मुकर गया था। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि वादी-प्रतिवादी ने विकल्प में 2,50,000 रुपये के लिए डिक्री के लिए प्रार्थना की थी यदि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए उसके मुकदमे का फैसला नहीं किया गया था। हम इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हैं कि कर्नल सुखदेव सिंह का आचरण भी पूरी तरह निष्पक्ष या दोषरहित नहीं रहा है।

(13) परिणामस्वरूप और ऊपर बताए गए कारणों से, हम वर्तमान अपील की अनुमति देते हैं; विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले और डिक्री को रद्द कर दें और विशिष्ट प्रदर्शन की डिक्री देने के मुकदमे को खारिज कर दें। हालाँकि, हम 2,25,000 रुपये की वसूली हर्जाने के रूप में करने का आदेश देते हैं , इस शर्त के साथ कि अपीलकर्ता प्रतिवादी को भुगतान के लिए इस फैसले की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर अदालत के रजिस्टर में इस धनराशि को जमा करेगा । यदि उक्त धनराशि निर्धारित समय के भीतर जमा नहीं की जाती है तो वादी-

प्रतिवादी वाद दायर करने की तिथि से भुगतान तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज का हकदार होगा। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

जेएसटी

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अँग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

Checked By:

Ravleen Kaur

Trainee Judicial Officer

Chandigarh Judicial Academy,

Chandigarh